अधिगम
अंक 23 : जून 2022
ISSN : 2394-773X

भारत का प्राचीनतम विश्वविद्यालय तक्षशिला

डॉ० सन्तोष कुमार चतुर्वेदी*

मनुष्य इसीलिए और जीवधारियों से अलग है कि वह न केवल अनुभव से ज्ञान अर्जित करता है अपितु उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित भी करता है। जीवन की तरह ज्ञान भी सतत् आगे बढ़ता रहता है। दुनिया का हर जीवन ज्ञान के अक्षय कोष में अपना योगदान देकर अन्ततः विदा लेता है। ज्ञान को हस्तान्तरित करने का एक स्थायी उपादान है ज्ञान केन्द्र, जिन्हें हम आम तौर पर स्कूल, विद्यालय या विश्वविद्यालय की संज्ञा देते हैं। यह परंपरा भी काफी पुरातन है।

प्राचीन भारतीय संस्थाओं में ज्ञान का अपना विशिष्ट स्थान है। अगर वर्ण व्यवस्था की बात करें तो ब्राह्मण का मुख्य कर्त्तव्य ही शास्त्र का अध्ययन और अध्यापन हुआ करता था। इसी गुण के चलते वह वर्ण व्यवस्था के शीर्ष पर आसीन हुआ करता था। आश्रम व्यवस्था का पहला सोपान ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा प्राप्त करने का था। षोडश संस्कारों में विद्यारम्भ, उपनयन, समावर्तन जैसे संस्कार विद्या प्राप्ति से ही जुड़े हुए थे। इन संस्कारों का मूल उद्देश्य व्यक्ति को पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों के लिए ज्ञान के स्तर पर तैयार करना होता था।

प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति में उच्च शिक्षा का अपना विशिष्ट महत्त्व था। यह शिक्षा वही प्राप्त करते जिसमें शिक्षा के प्रति जुनून होता। ऐसे लोग तमाम खतरे उठाकर भी शिक्षा प्राप्त करते और ज्ञान कोष को समृद्ध करने का कार्य करते। इस क्रम में भारत में प्राचीन विश्वविद्यालयों की एक लम्बी परम्परा दिखायी पड़ती है। भारत में ऐसे विश्वविद्यालय ई. पू. दसवीं सदी में उद्भूत हुए जो 12वीं शताब्दी तक अस्तित्व में बने रहे। ये विश्वविद्यालय इस मामले में अद्भुत कहे जा सकते हैं कि ये संस्थान सांगठनिक रूप से बेजोड़ थे और इनकी वैश्विक स्तर पर ख्याति थी। तब जब दुनिया के विभिन्न हिस्सों में विश्वविद्यालय स्थापित करने की परम्परा

* प्राचार्य, महामति प्राणनाथ महाविद्यालय मऊ, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

भी शुरू नहीं हुई थी, भारतीय विश्वविद्यालयों में मेधावी और जरूरतमंद छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करने की शुरुआत हो गयी थी। (यूनिवर्सिटीज इन ऐंसीएन्ट इंडिया, डी. जी. आप्टे, फैकल्टी ऑफ एजूकेशन एंड साइकेलॉजी, महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, पृष्ठ 11) यानी कि शिक्षा प्राप्त करने की चाह रखने वाले व्यक्ति की जिजीविषा के सामने निर्धन होना आड़े नहीं आता था। समाज में ऐसे वर्ग का सम्मान होता था तथा ऐसे लोगों की उन्नति का विशेष तौर पर ध्यान रखा जाता था।

भारत में प्राचीन विश्वविद्यालयों की जब भी बात आती है, तक्षशिला का नाम सब से ऊपर नज़र आता है। तक्षशिला आधुनिक 'तक्षिता' का प्राचीन नाम है। प्राचीन भारत में गांधार महाजनपद की राजधानी होने का श्रेय भी इसे प्राप्त था। तक्षशिला विश्वविद्यालय वर्तमान पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त के रावलपिण्डी शहर से 18 मील उत्तर की ओर अवस्थित हुआ करता था। अतीत में गौरवशाली नगर और राजधानी रह चुका तक्षशिला वर्तमान समय में रावलपिण्डी ज़िले की एक तहसील भर है। पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद से यह लगभग 35 किलोमीटर दूर अवस्थित है। सन 1863 ई0 में पुरातत्त्वविद् अलेक्जेंडर कनिंघम को सर्वप्रथम जमीन के नीचे दबे इस महान विश्वविद्यालय के अवशेष मिले। तत्पश्चात् 1912 से 1929 तक, सर जॉन मार्शल ने इस स्थान पर विस्तृत खुदाई की और प्रचुर तथा मूल्यवान सामग्री का उद्घाटन करके इस नगरी के प्राचीन वैभव तथा ऐश्वर्य की क्षीण झलक इतिहास प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत की। (व्हीलर, मोर्टिमर, मार्शल, सरजॉन ह्यूबर्ट (1876–1958), ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफी (ऑनलाइन संस्करण)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। डोईः 10. 10934 जुलाई 2017 को लिया गया।) उत्खनन से तक्षशिला में तीन प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं, जिनके वर्तमान नाम भीर का टीला, सिरकप तथा सिरसुख हैं। सबसे पुराना नगर भीर के टीले के आस्थान पर था। कहा जाता है कि यह पूर्वबुद्ध कालीन नगर था जहाँ तक्षशिला का प्रख्यात विश्वविद्यालय स्थित था सिरकप के चारों ओर परकोटे की दीवार थी। यहाँ के खंडहरों से अनेक बहुमूल्य रत्न तथा आभूषण प्राप्त हुए हैं जिनसे इस नगरी के इस भाग की जो कुशान राज्य काल से पूर्व का है, समृद्धि का पता चलता है। सिरमुख जो संभवतः कुषाण राजाओं के समय की तक्षशिला है, एक चौकोर नक्शे पर बना हुआ था। इन तीन नगरों के खंडहरों के अतिरिक्त, तक्षशिला के भग्नावशेषों में अनेक बौद्ध

विहारों की नष्ट–भ्रष्ट इमारतें और कई स्तूप हैं जिनमें कुणाल, धर्मरानिक और भल्लार मुख्य हैं। सन 1980 में यूनेस्को ने तक्षशिला को विश्व धरोहर स्थल घोषित किया।

तक्षशिला का यह क्षेत्र प्रारम्भ में व्यापारिक मण्डी था। यूनान, फारस, चीन और अफगानिस्तान के मध्य भाग में अवस्थित होने के कारण यह क्षेत्र सर्वप्रथम व्यापारिक मण्डी के रूप में सामने आया। इस क्रम में स्वाभाविक रूप से व्यापारी वर्ग के लोग यहाँ बसने लगे। अब व्यापारियों की चिन्ता यह थी कि किस तरह उनके बच्चों को बेहतर और उच्च शिक्षा मिले? इसके लिए व्यापारियों ने विद्वानों को आश्रय प्रदान करना शुरू किया। इसी के फलस्वरूप यहाँ उन भवनों का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ, जो तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा व्यवस्था के मूल केन्द्र बन गए। संस्था की ख्याति बड़ी तेजी से फैलने लगी। विश्व के विभिन्न हिस्सों से विद्वान आचार्य यहाँ आने लगे। आगे चलकर व्यापारिक संघों ने इस विश्व विद्यालय की आर्थिक मदद करनी शुरू कर दी जिससे इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ी और यह विश्व विद्यालय विद्या प्राप्ति का प्रमुख वैश्विक केन्द्र बन गया। इस नगरी का बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र होना प्रमाणित होता है। तक्षशिला प्राचीनकाल में जैनों की भी तीर्थस्थली थी। पुरातन प्रबंध संग्रह नामक ग्रंथ में (पृ० 107) तक्षशिला के अंतर्गत 105 जैन–तीर्थ बताए गए हैं।इसी नगरी को संभवतः तीर्थ माला चौत्यवंदन में धर्मचक्र कहा गया है (दे०एंशेंटजैन हिम्स, पृ० 55)

ईसा के जन्म के तकरीबन सात सौ साल पहले इस संस्था की नींव पड़ी। (वही, पृष्ठ 12) ऐसे में सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि एक शिक्षण संस्था के रूप में तक्षशिला के इस विश्वविद्यालय ने कम से कम सौ–दो सौ साल पहले शैक्षणिक कार्य शुरू कर दिया होगा। आगे चलकर ख्याति बढ़ने पर इसे विश्वविद्यालय का रूप प्रदान किया गया होगा। तक्षशिला के इस प्राचीन विश्वविद्यालय को दुनिया के शुरुआती विश्वविद्यालयों में से एक माना जाता है। हालांकि एक वर्ग ऐसा भी है जो आधुनिक अकादमिक सन्दर्भों के लिहाज से इसे विश्वविद्यालय मानने से गुरेज करता है लेकिन तथ्य और सबूत तो इस बात के हैं कि तक्षशिला में शिक्षण कार्य के उद्देश्य से बाकायदा व्याख्यान कक्ष निर्मित थे। यही नहीं विश्वविद्यालय के शिक्षकों के लिए आवासीय सुविधाएँ भी यहाँ पर मौजूद थीं।और ये बातें ही सारी कहानी बताने के लिए अपने आप में पर्याप्त हैं।

तक्षशिला सिंधु के पूर्वी तट पर अवस्थित था। (सिंधोरुभयतः पार्श्वेदेशः परमशोभनः, वाल्मीकि रामायण, सप्तम, 100–11) अन्य नगरों की तरह ही तक्षशिला की स्थापना के संदर्भ में बहुविध किवदंतियाँ और आख्यान मिलते हैं। हालांकि ऋग्वेद में गांधार का उल्लेख मिलता है लेकिन तक्षशिला का पहला स्पष्ट उल्लेख रामायण में ही मिलता है। अयोध्या के राजा राम की विजयों के उल्लेख के सिलसिले में हमें यह ज्ञात होता है कि उनके छोटे भाई भरत ने अपने नाना केकय राज अश्वपति और मामा युधाजित के आमंत्रण और उनकी सहायता से गंधर्वों के देश (गांधार) को जीता (माथुर, विजयेंद्र कुमार, ऐतिहासिक स्थानावली, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1990, पृष्ठ 386) और वहाँ पर दो नगरों की स्थापना करते हुए अपने दो पुत्रों को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया।
('तक्षंतक्षशिला यांतुपुष्कलंपुष्कलावते, गंधर्व देशेरुचिरेगांधार विषये ये चसः', वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 101–11)

1. गन्धर्व देश में भरत के बड़े पुत्र राजकुमार तक्ष के लिए तक्षशिला नामक नगर स्थापित किया गया। राजकुमार तक्ष को ही यहाँ का शासक भी नियुक्त कर दिया गया। (रामायण, 7.101.10–16)
2. गांधार क्षेत्र में पुष्कलावत (जो दूसरे पुत्र राजकुमार पुष्कल के लिए स्थापित किया गया।)

कालिदास ने रघुवंश 15,89 में भी इसी तथ्य का उल्लेख किया है– 'सत क्षपुष्कलौ पुत्रौ राज धान्यौतदाख्ययौ, अभिषिच्याभिषेका हींरामान्तिकमगात्पुनः।' यानी कि दोनों राजकुमारों ने इन नगरों को अपनी राजधानी बना कर यहीं से अपने शासन कार्य का संचालन किया। (रघुवंशम्, 15, 88–9; वाल्मीकि रामायण, सप्तम, 101.10–11; वायु पुराण,, 88.190, महाभारत, प्रथम 3.22)। रामायण में तक्षशिला को एक शानदार नगर कहा गया है जो अपने धन के लिए प्रसिद्ध था।

किवदंती है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात राजा परीक्षित पांडवों के राज्य के उत्तराधिकारी बने। उनकी मृत्यु नागराज तक्षक द्वारा डसने से हो गयी थी। तक्षशिला का वर्णन महाभारत में, परीक्षित के पुत्र जनमेजय द्वारा विजित नगरी के रूप में है। परीक्षित के पुत्र जनमेज ने बदला लेने के लिए जिस नाग यज्ञ का आयोजन किया, वह स्थल यहीं पर था। (महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व, अध्याय 5)

ऐसा लगता है कि उत्तर वैदिक काल तक तक्षशिला एक नगर के रूप में विकसित हो चुका था। (मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, 1999, पृष्ठ 547) छठी शती ई.पू. के पूर्व पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में भी तक्षशिला का उल्लेख किया है। बौद्ध साहित्य, विशेषकर जातक ग्रन्थों में तक्षशिला का अनेक बार उल्लेख है। तेलपत्त और सुसीम जातक में तक्षशिला को काशी से 2000 कोस दूर बताया गया है। (माथुर, विजयेंद्र कुमार, ऐतिहासिक स्थानावली, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1990, पृष्ठ 386–87) जातक ग्रंथों (उद्दालक तथा सेत केतु जातक) में तक्षशिला के विश्वविद्यालय की भी अनेक बार चर्चा हुई है। जातक ग्रंथों से पता चलता है कि देश के विभिन्न स्थानों से छात्र यहाँ पर आकर आचार्यों के सान्निध्य में ज्ञान प्राप्त करते थे। (जातक 3, पृष्ठ 158) महाकवि कालिदास अपने ग्रन्थ रघुवंशम में रघुवंशी क्षत्रियों के वंशजों के इस क्षेत्र पर शासन का उल्लेख करते हैं। (रघुवंशम्, 15.89) सतक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्यौतदाख्ययौ, अभिषिच्याभिषेकार्हौरामान्तिकमगात्पुनः।'

कुंभकार जातक में नग्न जित्नामक राजा की राजधानी तक्षशिला में बताई गई है। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने के समय यहाँ का राजा आंभी (Omphis) था जिसने सिकन्दर को पुरु के विरुद्ध सहायता दी थी।

ईरान के सम्राट के 520 ई. पू. के अभिलेख से पंजाब के पश्चिमी भाग पर उसके विजय एवम् प्रभुत्व का उल्लेख मिलता है। इस तरह तक्षशिला भी कुछ काल के लिए ईरान के प्रभुत्व में चला गया होगा।

तक्षशिला के आभिलेखिक साक्ष्य भी मिलते हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण हेलियोडोरस का गरुड़ ध्वज स्तम्भ लेख है। वस्तुतः नवें शुंग शासक महाराज भाग भद्र के दरबार में तक्षशिला के यवन राजा अन्तलिखित की ओर से दूसरी सदी ई.पू. में हेलियोडोरस को राजदूत नियुक्त किया गया था। भागवत धर्म से प्रभावित हेलियोडोरस ने न केवल भागवत धर्म स्वीकार कर लिया बल्कि उसने एक विष्णु स्तम्भ का निर्माण भी करवाया तथा उसके सामने गरुड़ ध्वज स्तंभ बनवाया। इस स्तंभ से प्राप्त अभिलेख इस प्रकार है।

no no loklnol x#Mèo t v;
dkfjr b"; gfy;knj.k Hkkx

oru fn;l i=.k rD[k flykdu
;kunru vkxru egkjkt l
vUrfyfdr lmirkl dk#jtk
dklhi ¼=½¼Hkk½ x ¼Hk½ æl=krkjl
olu ¼pr½ nlu jktuo èkekulA

तक्षशिला का दौरा करने वाले फैक्सियन ने इसका नाम 'कटऑफहेड' के रूप में दिया था। एक जातक की मदद से, उन्होंने इसे उस स्थान के रूप में व्याख्यायित किया था जहाँ बुद्ध ने अपने पिछले जन्म में पूसाया चंद्रप्रभा के रूप में एक भूखे शेर को खिलाने के लिए अपना सिर काट दिया था। यह परंपरा अभी भी सिरकप के सामने के क्षेत्र के साथ बनी हुई है (जिसका अर्थ है सिर काट दिया) 19वीं शताब्दी में बाबरखाना ('हाउस ऑफ टाइगर') के रूप में जाना जाता था, जो उस स्थान की ओर इशारा करता है जहाँ बुद्ध ने अपना सिर चढ़ाया था। इसके अलावा, तक्षशिला घाटी के दक्षिण में एक पहाड़ी श्रृंखला को मार्गला ('काटाहु आगला') कहा जाता है। (सैफुररहमान डार, प्राचीनता, अर्थ और तक्षशिला या तक्षशिला नाम की उत्पत्ति। पंजाब अतीत और वर्तमान। 11 (2): 11)

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बिंदुसार के शासन काल में तक्षशिला के निवासियों ने विद्रोह किया किंतु इस प्रदेश के प्रशासक अशोक ने उस विद्रोह को शांति पूर्वक दबा दिया। अशोक के राज्य–काल में तक्षशिला उत्तरापथ की राजधानी थी। कुणाल की करुणा जनक कहानी की घटना स्थली तक्षशिला ही थी, जिसका स्मारक कुणाल स्तूप आज भी यहाँ विद्यमान है। अशोक के पश्चात् उत्तर–पश्चिमी भारत में बहुत समय तक राजनीतिक अस्थिरता रही। बैक्ट्रिया या बल्ख के यूनानियों (232–100 ई०पू०) तथा शक या सिथियनों (प्रथम शती ई०) तथा तत्पश्चात पार्थियनों और कुषाणों ने तीसरी शती ई० तक तक्षशिला तथा पार्श्ववर्ती प्रदेशों पर राज्य किया। चौथी शती ई० में तक्षशिला गुप्त सम्राटों के प्रभाव–क्षेत्र में रही किंतु पाँचवीं शती ई० में होने वाले बर्बर हूणों के आक्रमणों ने तक्षशिला की सारी प्राचीन समृद्धि और सभ्यता को नष्ट कर दिया। सातवीं शती ई०के तृतीय दशक में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तक्षशिला को उजाड़ पाया था। उसके लेख के अनुसार उस समय तक्षशिला कश्मीर का एक करद राज्य था। इस के पश्चात तक्षशिला का अगले 1200 वर्षों का इतिहास विस्मृति के अंधकार में विलीन हो जाता है।

जिस समय तक्षशिला का उत्कर्ष हुआ, यह क्षेत्र हिन्दू धर्म, संस्कृति और परम्परा से काफी प्रभावित था। पढ़ने–पढ़ाने की भाषा संस्कृत को उसका स्वरूप प्रदान करने में तक्षशिला की बड़ी भूमिका अवश्य रही होगी। विद्वान शिक्षकों की वजह से ही यह संस्थान उच्च शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में ख्यात हुआ। ये विद्वान अपने क्षेत्र और विषय में पारंगत होते थे। इन शिक्षकों की ख्याति के कारण ही दूर दराज के छात्र यहाँ सहज ही खिंचे चले आते थे। तक्षशिला में पाटलिपुत्र, राजगृह, मिथिला, बनारस, उज्जैन, कौशल, मध्य देश और कुरु राज्य जैसे क्षेत्रों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए पहुँचते थे। यहाँ आना इतना आसान नहीं होता था। तब जब कि इन रास्तों से यात्रा करना पग पग पर खतरे और अनिश्चितता से भरा हुआ था, परिवहन की कोई सुविधा नहीं थी, यह एक जोखिम भरा निर्णय होता था। उस समय सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवियों के यहाँ पर होने के चलते इसे भारत की बौद्धिक राजधानी नाम से भी नवाजा जाता था।

यहाँ का प्रत्येक शिक्षक अपने आप में एक संस्था की तरह होता था। सभी शिक्षकों को अपने पठन–पाठन में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी। शिक्षक की स्वायत्तता को इस बात से समझा जा सकता है कि पाठ्यक्रम को निर्धारित करने और उसकी कालावधि निश्चित करने की पूरी जिम्मेदारी उसी के ऊपर होती थी। छात्रों को पाठ्यक्रम के लिए स्वीकार या अस्वीकार करने का पूरा अधिकार शिक्षक के पास ही होता था। जब शिक्षक को इस बात का इत्मीनान हो जाता था कि छात्र की शिक्षा पूरी हो गयी है, तब उसे मुक्त कर दिया जाता था। सामान्य तौर पर किसी भी क्षेत्र या विषय में विशेषज्ञता हासिल करने में लगभग आठ वर्ष लग जाते थे। हालांकि यह कोई लक्ष्मण रेखा नहीं थी और इस अवधि के पहले या बाद भी छात्र की शिक्षा पूरी हो सकती थी। इस बात के भी कुछ साक्ष्य मिलते हैं कि कुछ मामलों में शिक्षकों ने अपने छात्र से शिक्षा को छोड़ने का परामर्श इसलिए दिया क्योंकि वे छात्र विश्वविद्यालय के सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक परिवेश में खुद को ढाल नहीं पाए थे। शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त कोई औपचारिक परीक्षा नहीं होती थी। परीक्षा को इसलिए भी अनावश्यक समझा जाता था कि क्योंकि विद्यार्थी को क्रमिक रूप से उसके विषय की आचार्य द्वारा तरतीबवार शिक्षा प्रदान की जाती थी। उनके ज्ञान से संतुष्ट होने के पश्चात ही उसे आगे की शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी द्वारा विश्वविद्यालय की शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त विश्वविद्यालय में न

किसी तरह का न तो कोई विशिष्ट आयोजन होता था और न ही विद्यार्थी को कोई लिखित डिग्री या उपाधि ही प्रदान की जाती थी। विद्यार्थी का ज्ञान ही दरअसल उसकी डिग्री होती थी जो उसकी आजीविका के रूप में काम आती थी।

विश्वविद्यालय होने के नाते तक्षशिला के इस संस्थान में संबंधित विषय की उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस क्रम में विद्यार्थी को सम्बन्धित विषय की सम्पूर्ण जानकारी प्रदान की जाती थी। आम तौर पर विद्यार्थी अपनी प्राथमिक शिक्षा आठ वर्ष की उम्र तक, अपने घर परिवार में ही प्राप्त करता था। आज जिसे माध्यमिक शिक्षा कहा जाता है, वह उस समय आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत संचालित होती थी। माध्यमिक शिक्षा में आठ से बारह वर्ष लग जाते थे। इस तरह उच्च शिक्षा प्राप्त करने तक विद्यार्थी की उम्र न्यूनतम सोलह वर्ष की हो जाती थी। यह उम्र जिज्ञासा की होती है जिसमें व्यक्ति तर्क वितर्क के जरिए किसी भी समाधान तक पहुँचने की कोशिश करता था ।इस कार्य में आचार्य अग्रणी भूमिका निभाता था और अपनी विशेषज्ञता प्रमाणित करता था।

ikB;Øe

जहाँ तक तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रमों की बात है, ये बहुआयामी पाठ्यक्रम थे। ऐसा लगता है कि पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय उनकी उपादेयता पर जरूर ध्यान रखा जाता होगा, ताकि ये पाठ्यक्रम आगे चलकर विद्यार्थी के जीविकोपार्जन में सहायक साबित हो सके। साहित्य के अतिरिक्त यहाँ के पाठ्यक्रम वैज्ञानिक और तकनीकी भी हुआ करते थे। मुख्य रूप से यहाँ के पाठ्यक्रमों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. वेद से जुड़े पाठ्यक्रम
2. शिल्प से जुड़े पाठ्यक्रम

तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ाए जाने वाले वेदों की संख्या तीन मिलती है। ये वेद थे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। यह कह पाना कठिन है कि चौथे वेद अथर्ववेद का नाम इस सूची में क्यों नहीं है। इस के पीछे यह कारण हो सकता है कि अथर्ववेद ऐसा वेद है जिसमें बहुत दोहराव है। यानी उसमें वर्ण्य विषय पहले के तीन वेदों अर्थात वेद त्रयी में आ जाते हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अथर्ववेद में जादूटोना, भूतप्रेत जैसे अंधविश्वासों की भरमार है। नवीनतम ज्ञान का केन्द्र होने के चलते यहाँ के

आचार्य इन अंधविश्वासों पर यकीन नहीं करते रहे होंगे। हालांकि मनुस्मृति में कहा गया है कि धार्मिक अनुष्ठान कराने वाले पुरोहितों को अथर्ववेद में पारंगत होना चाहिए। वेदाध्ययन का मतलब यह होता था कि उन्हें ध्यान से पढ़ा जाए और कंठस्थ किया जाए ।

विभिन्न हिस्सों से छात्र तक्षशिला आते और सीधे अपने शिक्षक के साथ अपने चुने हुए विषय में शिक्षा ग्रहण करते। प्राचीन भारत के कई प्रख्यात चिकित्सकों ने इस विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। वेद के साथ–साथ ब्राह्मण ग्रंथों और वेदांग, का भी अध्ययन किया जाता था, जिनमें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्तं, छन्द, ज्योतिष जैसे विषय आते हैं। वेदांग का विकास मूलतः वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और उनके द्वारा वेदों की रक्षा के उद्देश्य से हुआ है। वेदों में जिन शब्दों का प्रयोग जिन–जिन अर्थों में किया गया है, उनके उन–उन अर्थों का निश्चयात्मक रूप से उल्लेख निरूक्त में किया गया है। इसीलिए निरुक्त को वेदपुरुष का कान कहा गया है। निःशेष रूप से जो कथित हो, वह निरुक्त है। इसे वेद की आत्मा भी कहा गया है। इसका आशय यह है कि वेदों को केवल कंठस्थ करना ही काफी नहीं, अपितु उसको अर्थ सहित समझना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अर्थ के बिना वेदों का ज्ञान अर्थ हीन है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय में मुख्य रूप से वेद त्रयी, 18 शिल्प, धनुर्विद्या, हस्तविद्या, मंत्रविद्या, चिकित्सा शास्त्र, शल्यचिकित्सा (सर्जरी), आयुर्वेद, व्याकरण, दर्शन, राजनीति आदि विभिन्न विषय पढ़ाए जाते थे। अट्ठारह शिल्पों में किसका अध्ययन किया जाता था, इसे कहीं भी स्पष्ट नहीं किया गया है। हालांकि यह स्पष्ट है कि ये शिल्प व्यावहारिक होते थे और धार्मिक एवम् साहित्यिक विषयों से भी जुड़े होते थे। डी. जी. आप्टे के अनुसार इन शिल्पों के अन्तर्गत पवित्र परम्पराओं, धर्म निरपेक्ष कानून, सांख्य, न्याय (तर्कशास्त्र), वैशेषिक, अंकगणित, वेद, पुराण, इतिहास, सैन्यकला, काव्य कर्म आदि। निश्चित रूप से इस सूची में वेद, पुराण सहित तमाम विषय ऐसे हैं जिनकी गणना आज शिल्पों के अन्तर्गत नहीं की जा सकती। विभिन्न स्रोतों के अनुसार तक्षशिला विश्वविद्यालय में निम्नलिखित शिल्पों की शिक्षा दी जाती थीः गणित, लेखा कर्म (एकाउंटेसी), मुनीमी, कृषि, वाणिज्य, लुहारगिरी, बढ़ईगिरी, तीरंदाजी, युद्ध कला, भविष्य बांचना, ज्योतिष शास्त्र, जादू गिरी, इन्द्रजाल, रथचालन, साँप पकड़ने की कला, गड़े खजानों को खोजने की कला, चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि।

इस सूची को देख कर ऐसा लगता है कि अट्ठारह शिल्पों का अर्थ व्यापक था न कि यह सिर्फ 18 तक सीमित था। (डी. जी. आप्टे, उपर्युक्त, पृष्ठ 13, 14) बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय धनुर्विद्या तथा वैद्यक की शिक्षा के लिए तत्कालीन सभ्य संसार में प्रसिद्ध था।

विश्वविद्यालयों से एक अपेक्षा यह भी होती है कि वे बदलते समय के अनुरूप अपने पाठ्यक्रमों में भी बदलाव करते रहें जिससे वहाँ के छात्र खुद की सार्थकता साबित कर सकें। छात्रों की सफलता में ही उस सम्बन्धित संस्थान की सफलता के बीज छिपे होते हैं। पाठ्यक्रमों का नवीनीकरण न होने से वे जड़वत हो जाते हैं और समय के प्रतिमान पर खरे नहीं उतर पाते। इस स्थिति में, जबकि अपने समय के बेहतरीन आचार्य इस संस्था से जुड़े हुए थे, आश्चर्यजनक रूप से तक्षशिला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में लम्बे समय तक कोई बदलाव नहीं किया गया। जब से यह विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया और जब तक यह कार्यरत रहा तब तक पाठ्यक्रमों में बहुधा एकरूपता ही दिखाई पड़ती है। हाँ, पाठ्यक्रमों की सूची में जरूर कुछ विषय जोड़े गए जिसकी आवश्यकता राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या धार्मिक कारणों से समय–समय पर महसूस की गई। उदाहरण के तौर पर छठीं शताब्दी ई.पू. में जब तक्षशिला पर फारस का अधिकार हो गया तो उस समय यहाँ प्रचलित ब्राह्मीलिपि की जगह खरोष्ठी लिपि का प्रचलन आरम्भ हो गया। दूसरी सदी ई.पू. में जब तक्षशिला पर हिन्द यवनों का अधिकार हो गया तब यहाँ यूनानी भाषा की पढ़ाई आरम्भ हो गयी। क्योंकि तब ऐसे साक्ष्य मिलते हैं कि यहाँ के लोग यूनानी भाषा को अच्छी तरह समझते थे। यहाँ के शिक्षकों को स्रोत के रूप में कहीं से भी ज्ञान अर्जित करने में कोई आपत्ति नहीं थी। भले ही वह विदेशी स्रोत ही क्यों न हो। पहली सदी ई.पू. में यह स्थान सीथियनों और ईसा की पहली सदी में कुषाणों के अधिकार में रहा। दोनों के यहाँ कोई संस्कृति और सभ्यता नहीं थी जिसका प्रभाव विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर पड़ता हुआ दिखाई पड़ता है ।पाँचवीं सदी में जब यह क्षेत्र हूणों के आतंक से अतिक्रमित हुआ, तब यहाँ के पाठ्यक्रम और परिवेश पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप ही एक विश्वविद्यालय के रूप में तक्षशिला का पतन तेजी से आरम्भ हो गया।

विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर एक और घटना का व्यापक धार्मिक प्रभाव पड़ा। यह घटना थी बुद्ध का जन्म और बौद्ध धर्म का बढ़ता हुआ

प्रभाव। तक्षशिला इस घटना से अछूता नहीं रह सका। हालांकि शुरुआत में वैदिक प्रभाव के चलते बौद्ध प्रभाव से यह प्रभावित नहीं हुआ लेकिन देश के पूर्वी भाग से जब विद्यार्थियों का यहाँ आना आरम्भ हुआ तब बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल करना पड़ा। (डी. जी. आप्टे, उपर्युक्त, पृष्ठ 15) दूसरी शताब्दी ई.पू. में जब बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का उदय हुआ, तब यहाँ पर बौद्ध सिद्धान्तों के आलोचकीय अध्ययन ने विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। लेकिन यहाँ के बौद्ध अध्ययन ने बौद्ध धर्म या सिद्धांतों के प्रसार में कोई विशेष भूमिका नहीं निभाई। हाँ, बौद्ध सिद्धान्तों में पारंगत विद्वानों को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कला हो या विज्ञान, या फिर शिल्प, सिद्धान्तों के साथ–साथ प्रायोगिक पक्ष की पढ़ाई भी की जाती थी। हर सैद्धान्तिक बहस को उसके व्यावहारिक पहलू की प्रस्तुति से जोड़ कर देखा जाता था। विज्ञान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों जैसे चिकित्सा विज्ञान के अध्येताओं के साथ इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाता था कि वे अपने विषय में पारंगत हो कर ही बाहर जाएँ। चिकित्सा विज्ञान का अधूरा ज्ञान काफी खतरनाक माना जाता था। जीवन से जुड़े होने के कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता था। कुछ पाठ्यक्रमों की समय सीमा निर्धारित थी। चिकित्सा के कुछ पाठ्यक्रम सात वर्ष के थे तथा पढ़ाई पूरी हो जाने के बाद प्रत्येक छात्र को छः माह का शोध कार्य करना पड़ता था। इस शोध कार्य में वह कोई औषधि की जड़ी–बूटी पता लगाता तब जा कर उसकी शिक्षा पूर्ण होती थी।

पाठ्यक्रम का चुनाव करने के लिए विद्यार्थी प्रायः स्वतन्त्र होते थे। हाँ, इस बात का ध्यान जरूर रखा जाता था कि विद्यार्थी उस विषय में रुचि रखता हो और उस विषय की पृष्ठभूमि से अच्छी तरह परिचित हो। आमतौर पर युद्ध कौशल का ज्ञान क्षत्रिय वर्ण के छात्र ही प्राप्त करते थे लेकिन इस बात के भी प्रमाण हैं कि ब्राह्मण छात्र भी धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करता था। जातकों से पता चलता है कि एक ब्राह्मण राजपुरोहित ने अपने पुत्र को धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला भेजा था। (जातक, 3, पृष्ठ 522)

vkfFkd lg;kx

सभी आवश्यक आर्थिक मदद समाज द्वारा निःस्वार्थ भाव से उपलब्ध कराई जाती थी ।यह मदद उस आचार्य वर्ग के लिए थी, जो अपने सभी छात्रों के रहने और खाने–पीने के लिए सारी व्यवस्थाएँ किया करता था। किसी भी छात्र को अनिवार्य तौर पर किसी तरह का कोई शुल्क नहीं चुकाना पड़ता था, न ही इसकी कोई अपेक्षा ही की जाती थी। शुल्क न देने वाले छात्रों को किसी तरह के भेदभाव का सामना नहीं करना पड़ता था। शुल्क न देना पढ़ाई में किसी भी तरह आड़े नहीं आता था और न ही शुल्क के चलते किसी को विश्वविद्यालय छोड़ना पड़ता था। मिलिंदपनहो से ज्ञात होता है कि तत्कालीन युग में धनी छात्र धनराशि के रूप में गुरु दक्षिणा देता था जब कि निर्धन छात्र श्रम के रूप में अपनी गुरु दक्षिणा चुकाता था। (मिलिंदपनहो, 6.2) धनी छात्रों द्वारा प्रायःएक सहस्त्र कार्षापण गुरु दक्षिणा के रूप में प्रदान किया जाता था।

प्राचीन भारत में शिक्षा के लिए किसी तरह के शुल्क के शर्त की कड़ी निन्दा की जाती थी। यह इसलिए कि शिक्षा से न केवल मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता था बल्कि यह सामाजिक उन्नति के लिए भी आवश्यक माना जाता था। संचित ज्ञान को अपनी पीढ़ियों को सौंप कर ही तो मनुष्य दुनिया का सबसे बुद्धिमान प्राणी बन पाया है। इस तरह शिक्षा प्रदान करना पवित्र कार्य माना जाता था। शिक्षा प्रदान करने हेतु शुल्क लेने वाले व्यक्ति के लिए हिन्दू शास्त्रों में सामाजिक प्रतिबन्धों की व्यवस्था तक की गई। मनुस्मृति में कहा गया है कि शिक्षा के लिए शुल्क लेने वाला व्यक्ति समाज में बैठने तक का योग्य नहीं माना जाता था।

उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थाओं को अपना कार्य करने में किसी तरह की आर्थिक बाधा आड़े नहीं आती थी, क्योंकि उन्हें जो भी जरूरत पड़ती थी, वह सहज उपलब्ध होता था। विषयों का गहरा ज्ञान रखने वाले शिक्षक अक्सर त्याग का जीवन बिताया करते थे। समाज के समृद्ध लोग आध्यात्मिक रूप से इन आचार्यों से प्रभावित होते थे और ये लोग स्वेच्छा से इन्हें जरूरी सहायता प्रदान किया करते थे।कुछ छात्रों के सक्षम अभिभावक भी इन संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान किया करते थे। अभिभावक ऐसी सहायता या तो अपने पाल्य के संस्था में प्रवेश के समय या उसकी शिक्षा समाप्त होने पर दिया करते थे। आर्थिक रूप से अक्षम विद्यार्थी भी उसी अधिकार के साथ अपने पसन्द के विषय में जब

तक चाहें, बिना किसी दिक्कत के अपना अध्ययन जारी रख सकते थे। इस तरह इन संस्थाओं में पूरी तरह से लोकतंत्रात्मक माहौल होता था।

योग्य और मेधावी छात्रों को शासकों की तरफ से राजकीय खर्च पर यहाँ अध्ययन के लिए भेजा जाता था। काशी के एक राजकुमार का भी तक्षशिला में जाकर अध्ययन करने का उल्लेख एक जातक कथा में है। वाराणसी और राजगृह के राजपुरोहित के पुत्र और युवराजों के साथ ऐसे मेधावी छात्रों को भेजे जाने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। (जातक, 5 पृष्ठ 263, 238) इससे यह स्पष्ट होता है कि मेधावी छात्रों को राज्य की तरफ से यथोचित सहयोग प्रदान किया जाता था।

हर आचार्य के साथ व्यक्तिगत रूप से प्रायः सैकड़ों अध्येता जुड़े होते थे। इन आचार्यों को विभिन्न माध्यमों से सभी तरह की जरूरी आर्थिक सुविधाएँ उन व्यक्तियों द्वारा प्रदान की जाती थी, जो निःस्वार्थ भावना से यह कार्य स्वयमेव किया करते थे। विभिन्न शासक भी बिना किसी शर्त के इन संस्थानों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता किया करते थे। शिक्षा पूरी करने पर कुछ छात्र अपने शिक्षक को गुरु दक्षिणा प्रदान किया करते थे। लेकिन यह शिक्षा प्राप्त करने का मूल्य नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक और कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए ही हुआ करता था। छात्र यह गुरु दक्षिणा अपने आचार्य को पगड़ी, छाता या वस्त्र के प्रतीकात्मक रूप में प्रदान करता था। इस तरह हम कह सकते हैं कि मुफ्त शिक्षा आज की अवधारणा नहीं है बल्कि उस समय की भी एक प्रचलित अवधारणा थी कि हरेक सुयोग्य विद्यार्थी को मुफ्त शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हो।

nkf[ky: dh çfØ;k

तक्षशिला विश्वविद्यालय में समाज के हर वर्ण के लिए दाखिले की प्रक्रिया खुली हुई थी। दाखिला मुफ्त होता था। पाँचवा वर्ण माने जाने वाले चाण्डाल वर्ग के लोग इसका अपवाद थे। पाठ्यक्रम के चुनाव में किसी तरह का कोई बन्धन नहीं था। विषयों का चुनाव पूरी तरह छात्र के पसन्द पर निर्भर होता था। हाँ, विद्यार्थी से उस विषय के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि की अपेक्षा जरूर की जाती थी, जिसमें वह अपना दाखिला लेना चाहता था। इस तरह का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि अयोग्य छात्र का दाखिला लिया गया हो। किसी भी छात्र के दाखिले के समय विद्वान आचार्यों द्वारा उनकी कठिन परीक्षा ली जाती थी और उसमें खरा पाए जाने पर ही संबंधित छात्र का दाखिला लिया जाता था। कहा जाता है कि हर तीन

आवेदकों में से सिर्फ एक छात्र का ही दाखिला इस विश्वविद्यालय में हो पाता था। सुयोग्य विद्यार्थियों, जो ईर्ष्या मुक्त, स्वानुशासित तथा आत्मनियंत्रण जैसे गुण रखते थे, के लिए दाखिले में किसी तरह की कोई भी समस्या आड़े नहीं आती थी। प्राचीन भारत में हरेक विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति के पूर्व यह प्रमाणित करना होता था कि वह शान्त, संयमी, धीरवान और एकाग्र चित्त है।

l[kkfFku% drk fo|kukfLr fo|kfFku%l[keA
ukU;k |kx orkupk çol rkukReku eRd"krkAA
ukyL;kigruuke;orkukpk;fo}f"k.kkA
yTtk'khy foue lnj e[kh lhefruh uPNrkAA
ykd[;kfrdj%lre fHkerkfo|kx.k%çkI;rA

(रावत, प्यारे लाल, भारतीय शिक्षा का इतिहास, राम प्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1979, पृष्ठ 20 पर उद्धृत)

वास्तव में आचार्यों को भी हमेशा सुयोग्य छात्रों की तलाश रहती थी। और आचार्य इसके लिए प्रार्थना भी किया करते थे। एक आचार्य द्वारा इस तरह की प्रार्थना किए जाने का उल्लेख है : 'ओ ईश्वर, जिस तरह पानी ढलान की तरफ बहता है, जिस तरह महीने निरंतर गुजरते चले जाते हैं, उसी तरह ब्रह्मचारी हमारे पास आएँ।' (डी. जी. आप्टे, उपर्युक्त, पृष्ठ 20) गुरु जो कुछ जानते थे, बिना भेदभाव या छिपाव के सब कुछ शिष्य को सिखाते थे। गुरु की इच्छा होती थी कि उनके सिद्धांत, ज्ञान व अनुभव उनके उपरान्त भी जीवित रह कर लोककल्याण करें। गुरु का जीवन एक आदर्श होता था, जिसका शिष्य अनुसरण करते थे। गुरु ही विद्यार्थी का आध्यात्मिक एवम् मानसिक पिता होता था। प्रत्येक विद्यार्थी की व्यक्तिगत देखभाल, निर्धन व्यापारी की आर्थिक सहायता, अस्वस्थ होने पर विद्यार्थी की सेवा सुश्रूषा तथा अन्य आवश्यकताओं के समय गुरु को उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन करना होता था जैसे एक पिता अपने पुत्र के लिए करता है। (रावत, प्यारेलाल, भारतीय शिक्षा का इतिहास, राम प्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1979, पृष्ठ 21)

विश्वविद्यालय का सूत्र वाक्य या मोटो था : 'ज्ञान के लिए ज्ञान'। विद्यार्थी इस सूत्र वाक्य पर पूरी तरह अमल करते थे। विश्वविद्यालय की शैक्षणिक उपलब्धि को आमतौर पर किसी के जीवन के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता था। विश्वविद्यालय परिसर में पूरी तरह का लोकतांत्रिक

वातावरण था। सभी वर्ण के छात्र मिलजुल कर अध्ययन किया करते थे और पढ़ाई की प्रक्रिया में किसी से कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। जाति, धर्म और आर्थिक या सामाजिक सम्पन्नता को इस मेलजोल में बाधक नहीं बनने दिया जाता था।

विÜवविद्यालय के कुछ çख्यात छात्र

यह एक सुस्थापित तथ्य है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में अनेक विश्व प्रसिद्ध आचार्य शिक्षा देने का कार्य करते थे। लेकिन एक अजीब सी विडम्बना यह है कि विश्वविद्यालय के इन प्रख्यात शिक्षकों के नाम हमें किसी भी स्रोत से अब तक प्राप्त नहीं हो पाए हैं। क्या इसके पीछे वह अवधारणा काम कर रही थी, जिसमें विद्वतजन बिना किसी यश की इच्छा के अपना कार्य करते रहते थे। यहाँ तक कि वे जातक ग्रन्थ जो हमें इस विश्वविद्यालय के बारे में काफी जानकारियाँ प्रदान करते हैं, आचार्यों के नाम के सन्दर्भ में पूरी तरह मौन हैं। यहाँ से एक से बढ़ कर एक छात्र निकले जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की लेकिन इनमें से कोई अपने किसी आचार्य का नामोल्लेख नहीं करता। ऐसा लगता है कि यहाँ के आचार्य अपने शिष्यों को भी इस बात के लिए मना करते होंगे कि वे उनका नामोल्लेख कतई न करें। वरना और कौन सी लाचारी थी कि इन ख्यात नाम शिष्यों ने एक भी आचार्य का नाम नहीं लिया। परंपरागत रूप से यह पता चलता है कि संस्कृत के प्रख्यात व्याकरणविद् पाणिनी और पतंजलि इस विश्वविद्यालय के छात्र हुआ करते थे। पाणिनी ने ध्वनि विज्ञान और आकृति विज्ञान का एक व्यापक और वैज्ञानिक सिद्धांत दिया। अष्टाध्यायी जैसी चर्चित कृति पाणिनि द्वारा ही लिखी गई थी।

नन्द वंश का समूल नाश कर चंद्रगुप्तमौर्य को मगध साम्राज्य की गद्दी पर बिठाने वाले चाणक्य (कौटिल्य) यहीं के छात्र थे। महावंशटीका में अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध रचयिता चाणक्य को तक्षशिला का निवासी बताया गया है। चाणक्य ने प्राचीन अर्थशास्त्रों की परंपरा में आंभीय के अर्थशास्त्र की चर्चा की है, टॉमस के अनुसार आंभीय का संबंध तक्षशिला ही से रहा होगा (टॉमस–बार्ह स्पत्य अर्थशास्त्र– भूमिका पृ. 15) चाणक्य स्वयं भी तक्षशिला विद्यालय में आचार्य रहे थे। उन्होंने अपने परिष्कृत एवं विकसित मस्तिष्क द्वारा भारत की तत्कालीन राजनैतिक दुरवस्था को पहचाना तथा उसके प्रतिकार के लिए महान प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई।

बुद्ध काल में कोसल–नरेश प्रसेनजित, कुशीनगर के बंधुलमल्ल, वैशाली के महाली भी यहीं के छात्र थे। एक अन्य चिकित्सक कौमार भृत्य तथा परवर्ती काल में चाणक्य तथा वसुबंधु इसी जगत्प्रसिद्ध महाविद्यालय के छात्र रहे थे। इस विश्वविद्यालय में राजा और रंक सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार होता था। भारतीय चिकित्साशास्त्र के जनक चरक ने भी यहीं शिक्षा प्राप्त की थी। आगे चलकर 'चरक संहिता' नामक प्रख्यात आयुर्वेदिक ग्रन्थ का इन्होंने प्रणयन किया। मगध नरेश बिंबिसार के प्रसिद्ध राजवैद्य जीवक की शिक्षा यहीं पूरी हुई थी। उसका पूरा नाम जीवक कुमार भच्च था। सात वर्ष तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करने के पश्चात उसने देशाटन करके जड़ी बूटियों का ज्ञान अर्जित किया था। (रावत, प्यारे लाल, भारतीय शिक्षा का इतिहास, राम प्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1979, पृष्ठ 59) पाटलिपुत्र के निवासी जीवक दवाओं के क्षेत्र में विशेषज्ञता रखते थे और इन की ख्याति वैश्विक स्तर की थी। जीवक ने हर्यंक वंश के शासक बिम्बिसार के भगन्दर रोग का सफल इलाज किया था। इस के फलस्वरूप जीवक को राजा का राजवैद्य नियुक्त कर दिया गया। उस समय के प्रख्यात बौद्ध संघ का वैद्य जीवक को ही नियुक्त किया गया था। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के पीलिया रोग के इलाज के लिए बिम्बिसार ने जीवक को उनके पास भेज दिया था। जीवक अपनी शल्यचिकित्सा के लिए भी विश्वविख्यात थे। भीषण सिरदर्द के शिकार एक समृद्ध व्यापारी के जीवक द्वारा इलाज का जिक्र मिलता है। इस क्रम में बताया गया है कि उस व्यापारी के सिर में चीरा लगाकर जीवक ने दो कीड़े निकाले थे। इसके बाद जीवक ने मलहम लगाकर घाव को सिल दिया जिससे वह व्यापारी पूरी तरह निरोग हो गया।बुरी तरह उलझी हुई आंतों का जीवक द्वारा इलाज किए जाने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। 'पंचतंत्र' के लेखक विष्णु शर्मा भी यहीं के छात्र थे। कौशल के शासक प्रसेनजित तथा मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने भी यहीं शिक्षा प्राप्त की थी। महाभारत से ज्ञात होता है की आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरुणि और वेद ने तक्षशिला में ही शिक्षा ग्रहण की थी। (मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 547)

समय समय पर तक्षशिला को विदेशी आक्रांताओं का दंश भी झेलना पड़ा। यद्यपि तक्षशिला ने यवन, यवन–बाह्लीक, शक, पह्लव, कुषाण और हूणों के हमलों से खुद को रक्षित करने का प्रयास किया

लेकिन ये प्रयास सफल नहीं हो पाए। (मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 548) पहली शताब्दी में कुषाण वंश का भारत में साम्राज्य स्थापित हुआ। विदेशी पृष्ठभूमि वाले इन शासकों की रुचि शिक्षा के क्षेत्र में नहीं थी। यह समय तक्षशिला के लिए ही नहीं, बल्कि शिक्षा के लिए भी प्रतिकूल समय था। पाँचवीं शताब्दी में हूणों के आक्रमण ने तक्षशिला को तहस नहस कर दिया। इस तरह तक्षशिला विश्वविद्यालय का महत्त्व चौथी सदी ई. तक बना रहा। क्योंकि पाँचवी शताब्दी में जब फाहियान भारत आया था तो उस समय शिक्षा केंद्र के रूप में तक्षशिला का अस्तित्व समाप्त हो चुका था। हालांकि विदेशी आक्रमणों का प्रभाव विध्वंसात्मक ही रहा लेकिन एक सकारात्मक बात यह भी दिखाई पड़ती है कि तत्कालीन भारत नवीन ज्ञान से परिचित हुआ। विदेशी खरोष्ठी लिपि के प्रचार से भारतीय परिचित हुए। यूनानी तक्षण कला, मुद्रा निर्माण कला तथा दर्शनशास्त्र का भारत में भी प्रसार हुआ। (मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 548)

निश्चित रूप से इन नए विषयों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को और समृद्ध किया। यहाँ के एक आचार्य के निर्देशन में पाँच–पाँच सौ छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे।सम्भवतः तक्षशिला में अनेक कॉलेज थे, जिनमें प्रत्येक में 500 के लगभग छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे और इन कॉलेजों के प्रधान अध्यापक को आचार्य कहा जाता था। एक शिक्षक के नियंत्रण में बीस या पच्चीस विद्यार्थी रहते थे। शिक्षकों का निरीक्षक दिशा प्रमुख आचार्य (दिसा पामोक्खा चारिया) कहलाता था। जातक युग में यहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या बहुत अधिक थी। जो वेद और शिल्प में पारंगत हो कर एकांत में रहते थे, तथा जिनके साथ उनके शिष्य भी रहा करते थे। यहाँ पाठ्यक्रम निर्धारित होता था। छात्र अपनी इच्छानुसार विषय पढ़ते थे।

इस तरह तक्षशिला विश्वविद्यालय ने प्राचीन भारत की वह ज्ञानात्मक नींव डाली, जिसके चलते भारत की ख्याति वैश्विक स्तर पर स्थापित ही नहीं हुई बल्कि उसे विश्वगुरु के तौर पर भी जाना गया ।इस विश्वविद्यालय ने शिक्षा के जो मानक स्थापित किए वे आज भी हमें चकित करते हैं। मनुष्य होने के नाते शिक्षा प्राप्त करना हर व्यक्ति का अधिकार है, चाहे वह अमीर हो या गरीब। यह पाठ तक्षशिला ने ही पढ़ाया। शिक्षा समाज के लिए थी और शिक्षा प्रदान करने वाले आचार्य अपना प्रमुख कर्त्तव्य ज्ञान प्रदान करना मानते थे। गुमनाम रहते हुए ये आचार्य अपना

काम आजीवन करते रहते थे। प्रचार–प्रसार और विज्ञापन के दौर में आज यह स्वप्न सरीखा ही है।

lUnHk lph

- आप्टे, डी. जी., यूनिवर्सिटीज़ इन ऐंसीएन्ट इंडिया, फैकल्टी ऑफ एजूकेशन एंड साइकेलॉजी, महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा,
- मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1999
- रावत, प्यारे लाल, भारतीय शिक्षा का इतिहास, राम प्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1979
- जातक
- बार्ह स्पत्य अर्थशास्त्र
- महाभारत
- महावंशटीका
- रघुवंशम
- मिलिंदपनहो
- वाल्मीकि रामायण।
- वायु पुराण
- व्हीलर, मोर्टिमर, 'मार्शल, सरजॉन ह्यूबर्ट (1876–1958)', ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफी (ऑनलाइन संस्करण)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। डोई : 10.10934 जुलाई 2017